धर्म प्रचार
(आध्यात्मिक पक्ष)
भाग – ३

रेडियो (radio) में बताया जाता है कि अच्छी फसल लेने के लिए —

1. रोग रहित स्वस्थ बीज (अनुभवी ज्ञान या 'नाम')
2. तैयार ज़मीन (मन)
3. उत्तम अनुकूल पानी (सत्संग)
4. बीमारियों से बचाव (बुरी संगत से बचाव)
5. अनुकूल खाद (श्रद्धा – भावना)

की आवश्यकता है।

ठीक यही नुस्खा (formula) हमारे धर्म पर भी लागू होता है। युगों–युगों से गुरु, अवतार, पैगम्बरों द्वारा जीवों के कल्याण के लिए 'अनुभवी' ज्ञान रूपी **'बीज'** प्रदान होता रहा है। परन्तु हमारे अन्तःकरण तथा मन की भूमि मैली एवं **'रोगी'** होने के कारण हमारे अन्दर 'धर्म' **'प्रफुल्लित'** नहीं हो सका, क्योंकि हमारे **रोगी बीज, रोगी जमीन, हानिकारक पानी, 'रोगी वातावरण'** में **गलत 'खाद'** से पला हुआ, 'धर्म' का **'पौधा'** कैसे प्रफुल्लित हो सकता है?

करम धरम **पाखंड** जो दीसहि तिन जमु जागाती लूटै ॥ (पृ. ७४७)

ऐसे पौधे से **अच्छे फल** की क्या आशा हो सकती है ? ऐसे **'पौधे'** को जो **'फल'** लगता है, वह भी 'रोगी' होता है तथा आगे **'रोगी अंश'** को और अधिक बढ़ाने का कारण बनता है। इस प्रकार 'रोगी' धर्म के **'वातावरण'** में

जन्म लेकर पले हुए, पढ़े–पढ़ाए, धर्म–प्रचारक, जनता को सही, उच्च एवं सच्ची, मानसिक, धार्मिक तथा आत्मिक 'जीवन–दिशा' कैसे प्रदान कर सकते हैं ?

जपु तप संजम वरत करे पूजा मनमुख रोगु न जाई ॥
अंतरि रोगु महा अभिमाना दूजै भाइ खुआई ॥
बाहरि भेख बहुतु चतुराई मनूआ दह दिसि धावै ॥
हउमै विआपिआ सबदु ना चीन्है फिरि फिरि जूनी आवै ॥ (पृ. ७३२)

यह सब कुछ स्पष्ट रूप से **प्रत्यक्ष** व्यवहार में आ रहा है, परन्तु इस **'ग्लानि'** को महसूस करने, या इसके विरोध में आवाज़ उठाने की किसी को आवश्यकता प्रतीत नहीं होती तथा न ही कोई **साहस** ही करता है ।

हमारे **दिखलावे** वाले, **अहम् ग्रस्त,** मन ने स्वयं–आमन्त्रित, व्यर्थ, फजूल **मायिकी रूझान** इतने बढ़ा लिये हैं तथा इनमें इतने गलतान हो गयें हैं कि धर्म के **उच्च आत्मिक पक्ष की ओर** ध्यान देने की **फुरसत** ही नहीं तथा **न ही आवश्यकता प्रतीत होती है** । केवल **लोका–चारी, लोक–दिखलावे** या रस्मी, बाहरमुखी, फोकट धार्मिक **कर्म–काण्ड** में ही **'सन्तुष्ट'** हैं तथा अपने मन को फोकट, **'झूठी तसल्ली'** देकर अपने आप को **धोखा** दे रहे हैं !

दूसरी ओर, हम अपने निजी स्वार्थ, घरेलु उलझने सुलझाने के लिए, मुकदमें जीतने के लिए, बीमारियाँ दूर करने के लिए, परीक्षाएं पास करने के लिए, नौकरी के लिए, मायिकी प्राप्ति के लिए, तथा जीवन की अन्य अनेक **आवश्यकताओं की पूर्ति** के लिए 'धर्म' का प्रयोग करके, धर्म का **निरादर** कर रहे हैं । **दूसरे शब्दों में, धर्म** को **'मायिकी व्यापार' का 'साधन'** ही बना लिया है तथा इस पाखण्डी **धार्मिक व्यापार** में भी **'सौदेबाजी'** को इतना बढ़ा लिया है कि 'धर्म' को **'बहुत महँगा'** तथा आम, गरीब जनता के **सामर्थ्य से बाहर** कर दिया है ।

जिस धर्म ने हमें माया से ऊपर उठाना था, उस को हमने माया की **'रंगत चढ़ा कर'** (commercialise) **'मायिकी' व्यापार का साधन** ही बना दिया है । इसका प्रत्यक्ष प्रमाणा यह है कि हम गुरबाणी के पाठ–पूजा, कीर्तन–कथा, व्याख्यान को खुले–आम, निडर होकर, **'बेचते'** हैं । वह भी मुकाबले में, **मँहगे मूल्य !**

इस **पवित्र–पावन धर्म** को, जिसने हमें माया रूपी 'नागिनी' से **बचाना एवं छुड़ाना था,** हमने **'माया' का ही 'रूप'** बना दिया है तथा अव यह **'माया' नागिनी ही हमें खा रही है । छुड़ाये कौन ?**

पश्चिमी विद्या की मायिकी सभ्यता के प्रभाव अधीन, अधिकांश जनता तो परमेश्वर से **नास्तिक** है तथा 'धर्म' की **आवश्यकता** ही महसूस नही करती ।

यदि कोई जीव पूर्व संस्कारों या वर्तमान वातावरण के अधीन, धर्म की ओर **'रूची'** रखता है वह भी अधूरे या गलत निश्चयों के आधार पर **फोकट कर्म–काण्डों** तथा **'रीतियों'** में ही फँसा रहता है । जीव मनोकल्पित, फोकट, अधूरी, धार्मिक **'धारणाओं'** की सीमा में ही **'कैद'** है तथा वहाँ ही **पूर्णतया सन्तुष्ट** है । उसे **किसी** और 'आत्मिक ज्ञान' या **उत्तम धर्म की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती !**

इनमें से कई लोग मायिकी जरूरतों तथा निजी स्वार्थ के लिए, थोड़ा बहुत ज्ञान घोट कर, साखियाँ पढ़–सुन कर, स्वयं ही **'धार्मिक–प्रचारक'** बन बैठते हें तथ भोली–भाली जनता को फोकट **दिमागी ज्ञान** तथा मुरदा साधनों वाले कर्म–काण्डों में ही फँसा रखते है। जिन में उनको **स्वयं निश्चय नहीं होता** या **नाममात्र** ही होता है ।

जिनकी पिछले जन्मों की कोई आत्मिक कमाई होती है, उनकी आत्मा को इन थोथे ज्ञान तथा मुरदा साधनों द्वारा **'सन्तुष्टि' नहीं होती** तथा उनकी 'अन्तरात्मा' में कोई **उच्च आत्मिक 'रूचि'** या **'कांखी', 'भूख'** बनी रहती है तथा वे अपनी **'आत्मिक प्यास'** की पूर्ति के लिए **'खोज'** में **जुटे रहते हैं ।**

इनमें से कई जिज्ञासु, कई प्रकार के योग अभ्यास द्वारा रिद्धियाँ–सिद्धियाँ तथा दैवीय शक्तियों के करिशमों के नजारे अनुभव करते हैं । इन अनहोने, विलक्षण, नवीन करिशमों, अनुभवों तथा करामातों से, उनका मन इतना 'चकाचौंध' हो जाता है कि वे **"आपे से बाहर"** होकर स्वयं ही साधु, संत, गुरू, महात्मा, पीर तथा फकीर बन बैठते हें तथा ठाठ–बाठ रचा कर, उसी में **खचित हो जाते हैं** तथा जनता को धागे–तावीज़, जादू–टोने, जंत्र–मंत्र, विभूति, पाठ–पूजा आदि

फोकट साधनों में फँसा रखते हैं । इस प्रकार वे भी भावी पवित्र–पावन **आत्मिक अवस्था** से **कोरे तथा वंचित रह जाते हैं ।**

'धर्म प्रचार' के लेखों के प्रथम तथा द्वितीय भागों में बताया जा चुका हे कि हमारा धर्म–प्रचार का सिलसिला **'अहम्'** के अधीन, **'बुद्धि मण्डल' का 'खेल' है,** जो कि कर्म–बद्ध (law of karma) के नियम अनुसार चल रहा है तथा त्रिगुणी **'अहम्' की सीमा में, द्वैत–भाव वाली दुनियां में मनोकल्पित ज्ञान के सहारे** प्रचलित है । हम गुरबाणी का पाठ तथा गायन,रिवाज के तौर पर, देखा–देखी, लोक–दिखावे के लिए, बे–दिले, मायिकी लाभ या निजी स्वार्थ के लिए करते हें तथा इसमें **केवल सन्तुष्ट ही नहीं,** अपितु **'भद्र–पुरूष' बनकर घमण्ड** (superiority complex) में दूसरों को **तुच्छ निगाहों से देखते हैं** तथा **आरोप लगाते रहते हैं ।** गुरबाणी में दर्शायी गयी उत्तम पवित्र **'अनुभवी आत्मिक खेल'** की ओर **धयान देने की फुरसत ही नहीं, आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती,** या जान बूझ कर **लापरवाह तथा 'मचले'** हुए बैठे हैं ।

पिछले लेखों में बताया जा चुका है कि उत्तम–पवित्र **'अनुभवी आत्मिक धर्म'** की ओर प्रेरणा एवं मार्गदर्शन के लिए पहले–पहले बाहरमुखी **दिमागी धर्मों** के क्रिया–कर्म **आवश्यक** हैं । जिस प्रकार **'यात्रा' किये बिना मंजिल पर नहीं पहुँचा जा सकता तथा सीढ़ी के बिना छत के शिखर पर नहीं चढ़ा जा सकता ।** इसी प्रकार **अनुभवी, आत्मिक–'प्रकाश–मयी मंडल' तक पहुँचने के लिए** शारीरिक, मानसिक तथा धार्मिक **कर्म–क्रिया तथा संयम आवश्यक हैं ।** परन्तु यह धार्मिक क्रिया–कर्म –

यत्न हैं	–	'परिणाम' नहीं
साधन हैं	–	**'पूर्णता'** नही
यात्रा है	–	**'मंजिल'** नही
ज्ञान है	–	**'प्रकाश'** नही
साधना है	–	**'गुरप्रसाद'** नही
सीढ़ी है	–	**'शिखर'** नही

परन्तु हम बाहरमुखी कर्म – काण्डों को ही **'मंजिल'**, **'पूर्णता'** समझ कर इनमें ही **'सन्तुष्ट'** हैं तथा इसमें उत्तम, पवित्र, अच्छी, सुहावनी **'आत्मिक मंजिल'**, **'इलाही मंडल'** के **'आत्म – प्रकाश'**, **प्रीत, प्रेम, रस, चाव** (Divine joy and Bliss) से **अनजान, बेपरवाह, लापरवाह व मचले हुए** बैठे हैं ।

हमने अपनी **अज्ञानता** में, तुच्छ रूचियों, तुच्छ विचारों, पार्टीबाजी, ईर्ष्या द्वेष, वैर – विरोध, स्वार्थ तथा **'कुर्सी'** की लालसा से **'धर्म – स्थानों'** को भी **ईर्ष्या द्वेष के 'अड्डे', अहम् का 'क्षेत्र', क्रोध – प्रगट करने के 'अखाड़े',** मायिकी स्वार्थ के **'साधन' तथा 'मायिकी केन्द्र'** ही बना दिया है।

दुखदायी बात तो यह है कि जिस गुरू ग्रन्थ साहिब जी को हम **'इष्ट'** तथा **'गुरू' मानते हैं,** उनकी **पावन हजूरी** (उपस्थिति) में, **धर्म के नाम पर गुरबाणी के आशय के ठीक 'विपरीत'** ईर्ष्या – द्वेष, वैर विरोध, लोभ – स्वार्थ, क्रोध तथा **अहम्** का **खुल्लम – खुल्ला प्रदर्शन करते हैं** तथा गुरू महाराज का **निरादर करके** हम अपने धर्म की **'ग्लानी' के इश्तहार का** स्वयं की कारण बनते हैं । यह सब कुछ वर्तमान **बेअन्त धर्म प्रचार** के **'बावजूद'** हो रहा है ।

इस धार्मिक **'ग्लानि'** से **साफ सिद्ध होता हे** कि हमारी **धर्म – प्रचार** की **'प्रणाली'** में **दीर्ध नुक्स हैं ।**

तुच्छ रूचियों के आकर्षण से 'धर्म' को व्यर्थ 'रोग' लग गये हैं तथा इनकी **'छुह'** हमने **धर्म** तथा धर्म – स्थानों **को भी लगा दी है**

गुरबाणी में हमारी इस धार्मिक अधोगति तथा ग्लानि को यूं दर्शाया गया है –

पाठु पड़िओ अरु वेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे ।।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे ।।१।।
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मे कीए करम अनेका ।।
हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका ।। रहाउ ।।
मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही ।।
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही ।।२।।
मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए ।।

मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए ॥३॥
कनिक कामिनी हैवर गैवर बहु बिधि दानु दातारा ॥
अंन बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीऐ हरि दुआरा ॥४॥
पूजा अरचा बंदन डंडउत खट करमा रतु रहता ॥
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता ॥५॥
जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ ॥
बडी आरजा फिरि फिरि जनमे हरि सिउ संगु न गहिआ ॥ (पृ. ६४१)

अवर उपदेसै आपि न करै ॥ आवत जावत जनमै मरै ॥ (पृ. २६९)

काहु लै पाहन पूज धरयो सिर काहू लै लिंग गरै लटकाइओ ॥
काहू लखिओ हरि आवाची दिसा महि काहू पछाह को सीसु निवाइओ ॥
कोउ बुतान को पूजत है पसु कोउ म्रितान को पूजन धाइओ ॥
कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग श्री भगवान को भेदु न पाइओ ॥

(सॅवये श्री मुख वाक पा. १०)

वास्तव में **'धर्म'** हमारी **मायिकी अज्ञानता** को दूर करने तथा **परमेश्वर की ओर** सही तथा **उत्तम मार्गदर्शन** के लिए बनाये गये थे, परन्तु धीरे – धीरे हमारे **अहम् तथा द्वैत 'भाव' के मायिकी प्रभाव अधीन, यह धर्म ही,** इन **तुच्छ रुचियों के कारण** बन गये हें, जिसका दुखदायी परिणाम हमारे सामने **प्रत्यक्ष** है। इस प्रकार यह तथाकथित मजहब तथा इनका **प्रचार भी,** 'त्रिगुणों' की सीमा में, **अहम् वाली दुनियां** में भिन्न – भिन्न मनोकल्पित ज्ञान के सहारे प्रचलित है। यह सब कुछ **'त्रिगुणी मायिकी मंडल'** का **'खेल'** है।

जोगी जती तपी पचि हारे अरु बहु लोग सिआने ॥ (पृ. ५३७)

हउमै सभ सरीरु है हउमै ओपति होइ ॥
हउमै बडा गुबारु है हउमै विचि बुझि न सकै कोइ ॥२॥
हउमै विचि भगति न होवइ हुकमु न बुझिआ जाइ ॥
हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ ॥३॥ (पृ. ५६०)

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजे भाइ॥
मलु हउमै धोती किवै न उतरै जे सउ तीरथ नाइ ॥

बहु बिधि करम कमावदे दूणी मनु लागी आइ ॥
पड़िऐ मेलु न उतरै पूछहु गिआनीआ जाइ ॥ (पृ. ५६०)

माइआ मोहु जगतु सबाइआ ॥
त्रैगुण दीसहि मोहे माइआ
गुर परसादी को बिरला बूझै चउथै पदि लिव लावणिआ ॥ (पृ. १२९)

गुरू नानक साहिब ने दुनिया के बाहर–मुखी कर्म काण्डों वाले 'धर्मों' की यह ग्लानि देखकर, जीवों पर तरस करके, एक पवित्र–पावन, निर्मल, विलक्षण **आत्मिक तत्त्व वाले, 'धर्म'** की रचना की, जिसकी **नींव त्रिगुणों से ऊपर, चौथे पद, 'आत्मिक प्रकाश', 'नाम' में रखी,** तथा हमें **'द्वैत–भावना' के मण्डल में से निकाल कर ' सतिनाम'** का सच्चा एवं उच्च **'आत्मिक तत् ज्ञान', शबद–'नाम'** का उपदेश देकर,**'गाडी राह'** (पक्का रास्ता) दर्शायी। **गुरबाणी में इस तत्त्व–ज्ञान, शब्द,'नाम'** की ही शिक्षा **दृढ़ करवायी गयी है।**

गुरबाणी हमारा **इष्ट** है, **गुरु है,** तथा इसमें अंकित उपदेश हमें शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक **'जीवन–दिशा'** देते हैं तथा **'त्रिगुणी अहम् वाले मंडल' में से निकाल कर, 'चौथे पद' वाले 'आत्मिक मंडल' के 'प्रकाश'** की ओर प्रेरणा तथा मार्गदर्शन करते हैं।

इस प्रकार गुरबाणी हमारे लिए–

'जीवन दिशा' है
धर्म का आधार है
'जग चानण' है
चुंबकीय 'छुह' है
आत्मिक 'प्रकाश' है
'अमृत का स्त्रोत' है
'जीवन रौं' है

‘जीअ दान’ है

आत्मिक **‘दात’** है

‘शब्द’ है

प्रेम पदार्थ (Love gift) है

‘नाम’ है

‘इष्ट’ है

‘गुरू’ है ।

हमने गुरबाणी का पाठ तथा गायन करना है तथा इसके –

1. **‘शाब्दिक अर्थ’** सीरवने हैं,
2. **भाव – अर्थ** समझने हैं,
3. **‘आन्तरिक अर्थ’** पर विचार करना है
4. अनुभवी **‘चुम्बकीय – छुह’** अथवा **‘नाम’ का रस** पान करना है ।

जब दो व्यक्ति आपस में बात – चीत करते हैं, तब **दोनों व्यक्तियों का ‘ध्यान’** एक स्तर (level) पर होना **अनिवार्य** है, तभी उनके विचारों तथा मनोभावों का **‘मेल’** हो सकता है तथा **उचित जवाव** (response), **वाणिज्य – व्यापार, ‘आदान – प्रदान’** हो सकता है ।

इसी प्रकार जब हम गुरबाणी पढ़ते हैं, तब हम गुरु साहिब से **‘वार्तालाप’** कर रहे होते हैं। जिस **आत्मिक स्तर** पर बाणी की रचना की गयी है, **उसी या** उसके निकटवर्त्ती **स्तर पर हमारे मन का ‘ध्यान’ हो तब ही हम गुरबाणी के भाव को** समझ, ‘बूझ’, **‘चीन्ह’** सकते हैं तथा गुरू साहिब के **पावन हृदय की ‘छुह’** द्वारा अन्तर – आत्मिक **‘मेल’ अथवा ‘जीओ – जाणे’** हो सकता हे तथा **‘नाम का प्रकाश’** हो सकता है ।

यहाँ रेडियो का सुन्दर उदाहरण दिया जा सकता है । यदि हमारे रेडियों की वैव – लैंथ (wave length) जालन्धर के रेडियो स्टेशन (radio station) की वेव – लैंथ के साथ सुर (tune) न हो, तब हमारे रेडियो का, जालन्धर स्टेशन से, मेल (communication) नहीं हो सकता तथा हम वहाँ के प्रोग्राम से वंचित रह जाते हैं ।

इसी प्रकार हमारे मन का **'ध्यान'** गुरबाणी की उच्च–पवित्र आत्मिक वेवलैंथ पर **'सुर' न होने के कारण,** हम गुरबाणी का **पूरा 'अनुभवी' लाभ नहीं ले पाते,** तथा गुरू साहिब के **पावन 'हृदय', 'हजूरी' से, अन्तरात्मिक 'मेल' नहीं होता** । परिणाम स्वरूप, हमारा **आत्म–मंडल** के **'सच्चे–धन', 'नाम'** का **'वाणिज्य–व्यापार' अथवा 'आदान–प्रदान' नहीं होता** तथा हमारा **मायिकी जीवन रूखा–सूखा, रसहीन, अहम् के प्रभाव अधीन, मिथ्या धन्धों तथा मोह–माया** में **पलचि–पलचि कर दुखी हो रहा है ।**

मिलिऐ मिलिआ ना मिलै मिलै मिलिआ जे होइ ।।
अंतर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीऐ सोइ ।। (पृ. ७९१)

जिन्हीं नामु विसारिआ दूजे भरमि भुलाई ।।
मूलु छोडि डाली लगे किआ पावहि छाई ।। (पृ. ४२०)

हमारा **'धर्म प्रचार' भी,** इसी **'बे–ध्यान', तथा अज्ञानता के भ्रम में, 'रसहीन'** तथा **'नाम मात्र'** हो रहा है तथा यह हमारे **हृदय की कोमल** तारों को **झंकृत करने** या **'आत्मिक मनोभावों'** की **गगन उड़ानों का आनन्द देने में असमर्थ** है तथा हम आत्मिक प्रकाश या **'प्रिम–रस' से वंचित जा रहे हैं –**

उपदेसु करे आपि न कमावै ततु सबदु न पछानै ।। (पृ. ३८०)

गिआनु गिआनु कथै सभ कोई ।। कथि कथि बादु करे दुखु होई ।।
(पृ. ८३१)

हमारे **'बे–ध्यान'** पाठ का एक छोटा सा उदाहरण दिया जाता है –

अवरि काज तेरै कितै न काम ।।
मिलु साध संगति भजु केवल नाम ।। (पृ. ३७८)

प्रथम पंक्ति : **'अवरि काज' :–** हमने कभी ध्यान ही नहीं दिया कि यह 'अवरि काज' कौन से हैं, जो हमारे **कहीं काम नहीं आने।** रस्मी तरीके (routine) से 'बे–ध्यान', बिना–समझे ही पाठ करते रहते है। हास्यप्रद बात तो यह है कि जो **'अवरि काज' हमारे किसी काम नहीं आने, वही अवरि काज दिन रात करते रहते हैं, उन में ही 'गलतान' एवं मस्त हैं।** आश्चर्य की बात तो यह है

कि हम अन्य मायिकी जीवन के कार्यों पर तो अच्छी तरह गौर करते, तौलते तथा विचार करते है, परन्त गुरबाणी की इस पंक्ति पर विचार करने की कभी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई तथा हमारे मन में यह प्रश्न भी कभी नहीं उठा कि यह हमारे **'अवरि काज'** किसी **काम नहीं आने,** तो **काम आने वाले कौन से काज (कार्य) हैं?**

दूसरी पंक्तिः **'मिलु साध संगति'** में स्पष्ट प्रेरणा तथा ताकीदी हुकुम है कि 'साध संगति' में विचरण करते हुए –

'भजु केवल नाम' का **काम करना है,** जो हमारे लोक – परलोक में काम आयेगा तथा सहायक होगा।

परन्तु हमें तो पहले यह **निर्णय** ही नहीं कि **'साध संगत'** क्या है? तथा न ही **'साध संगति'** करने की **फुरसत तथा आवश्यकता** ही **प्रतीत होती है,** क्योंकि हम **स्वयं – आमन्त्रित व्यर्थ रुझानों में** इतने **गलतान एवं मस्त** हैं कि अन्य किसी अच्छी एवं उत्तम रुचि की ओर ध्यान देना ही **अनावश्यक प्रतीत होता है।**

'भजु केवल नाम'

हमें न **'नाम'** का ज्ञान है, तथा न **'भजु' (जाप),** 'सिमरन' का पता है। इस ताकीदी **'हुकुम'** की ओर **ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती,** उद्यम तो क्या करना था।

शब्द **'केवल'** खास ध्यान देने योग्य हैः

इसका तात्पर्य यह है कि हमें **केवल, 'नाम जपने' 'सिमरन'** का ही ताकीदी हुकुम है। **इसके अतिरिक्त** अन्य समस्त काम, रुझान हमारे **किसी काम नहीं आने।**

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि हम बाणी का पाठ तथा गायन, बे – ध्यान, बे – समझे **'रटन'** ही कर देते हैं। बाणी को **समझ कर, विचार कर, व्यवहार में लाने** के लिए हमारे जीवन में **फुरसत** ही नहीं तथा **आवश्यकता भी नहीं** प्रतीत होती, या **हम जानबूझ कर लापरवाह तथा मस्त हुए हैं।**

दुख की बात तो यह कि जिन '**कर्म–काण्डों**' से हमें गुरू साहिब ने **निकाला था,** हम उन्हीं कर्म–क्रियाओं में **पुनः फँस गये हैं** तथा इतने **गलतान तथा मस्त** हैं, कि हमें गुरबाणी में दर्शाये गये **अन्तर–मुखी आत्मिक 'आशय'** या '**तत्त्व**' का –

ज्ञान ही नहीं

रूची ही नहीं

आवश्यकता ही नहीं

उद्यम ही नहीं

भूख ही नहीं

प्यास ही नहीं

काँखी ही नहीं

फुरसत ही नहीं

निश्चय ही नहीं

जिसका परिणाम यह है कि हम उस **'आत्मिक' 'तत्त्व–ज्ञान' या 'नाम'** से कोरे हैं, अनजान है, **बेखबर** हैं, लापरवाह हैं, मचले हुए हें तथा **बाहरमुखी, फोकट, मुरदा साधनों** में ही अपना **अमूल्य जीवन व्यर्थ** खो रहे हैं !

इस धार्मिक 'ग्लानि' का **मूल कारण** हमारा **'अहम्' ही है ।** त्रिगुणी '**मायिकी–मण्डल**' में '**अहम्**' का ही प्रसार, बोलबाला एवं प्रचलन है ।

हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ॥
हउ विचि जंमिआ हउ विचि मुआ ॥
हउ विचि दिता हउ विचि लइआ ॥
हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ ॥
हउ विचि **सचिआरु कूडिआरु ॥**
हउ विचि पाप पुंन बीचारु ॥ हउ विचि नरकि सुरगि अवतारु ॥
हउ विचि हसै हउ विचि रोवै ॥
हउ विचि भरीऐ हा विचि धोवै ॥
हउ विचि जाती जिनसी खोवै ॥

हउ विचि मूरखु **हउ** विचि **सिआणा** ॥
मोख मुकति की सार न जाणा ॥
हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ ॥
हउमै करि करि जंत उपाइआ ॥
हउमै बूझै ता दरु सूझै ॥ गिआन विहूणा **कथि कथि** लूझै ॥
नानक हुकमी लिखीऐ लेखु ॥ जेहा वेखहि तेहा वेखु ॥ (पृ. ४६६)

जिस प्रकार **अन्धों** का **हाथी के विषय में वर्णन,** 'भिन्न – भिन्न' तथा **गलत** होता है, इसी प्रकार '**मायिकी' अन्धकार** के 'भ्रम – भुलाव' में, प्रत्येक जीव के विचार, निश्चय, धर्म – कर्म – क्रिया, **'भिन्न – भिन्न'** होना अनिवार्य है तथा इन के **निष्कर्ष** भी **'अलग – अलग'** होते हैं ।

त्रिगुणी **मायिकी अन्धकार** में, पूर्व संस्कारों, तथा वर्तमान संगति द्वारा बनी हुई, जीव के **'अस्तित्व की रंगत, अलग – अलग होनी अनिवार्य है ।**

मायिकी **"भ्रम – भुलाव"** में से उत्पन्न हुए **'मतभेद'** (differences) ही, हमारे विचारों, धारणाओं, धर्मों, कर्म – क्रिया की **'अनेकता'** में वाद – विवाद, ईर्ष्या, द्वेष, तअस्सुब, नफरत, टकराव तथा झगड़ों का **मूल कारण बनते हैं ।**

जब इनमें **'अहम्'** तथा 'तृष्णा की अग्नि' भड़क उठती है, तब यह **'कूर क्रिया उरझिओ सभ ही जग** श्री भगवान को भेदु न पाइओ' वाली **दशा** बन जाती है तथा हमारे **धर्मों** की **'ग्लानी'** का मूल कारण **बन जाती है** और हम –

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ॥ (पृ. १३३)

अनुसार अपना अमूल्य जीवन **व्यर्थ खो रहे हैं** तथा –

नाम बिना सभि कूड़ु गाल्ही होछीआ ॥ (पृ. ७६१)

में **ही गलतान एवं मस्त हैं ।**

गुरबाणी हमारी **'अनेकता', 'द्वैत – भाव' वाली वृत्ति** को **एकता सतिनाम'** की ओर **प्रेरित** करती है, परन्तु अल्प बुद्धि के **'मतभेद** तथा **चतुराइयों'** द्वारा, बाणी पर अपनी – अपनी **'रंगत'** चढ़ा कर अपनी **'अहम्‌मयी'** अल्पज्ञ बुद्धि के 'भ्रम – भुलाव' द्वारा ही अर्थ निकालते हैं तथा **अपने – अपने**

थोथे दिमागी ज्ञान द्वारा, बाणी के अर्थ तथा व्याख्या करते हैं बाणी के **गहरे** तथा **'आन्तरिक अनुभवी ज्ञान'** से **कोरे तथा अनजान** होने के कारण इनमें छिपे हुए **आत्मिक भावों, अर्थों** में **'टाल मटोल'** ही कर देते हैं तथा भोली भाली जनता को दिमागी ज्ञान के **भ्रम-भुलाव अथवा उलझनों** में ही फँसा रखते हैं ।

यही कारण है कि हम गुरबाणी के **आत्मिक प्रकाश, 'जीवन-सीध'** तथा **मार्गदर्शन से वंचित हो रहे हैं** तथा हमारा अमूल्य जीवन मायिकी भ्रान्ति में **तुच्छ एवं कूड़ मामलों में ही फँसा रहता है** ।

निम्नांकित वर्णन हमारे भावी धार्मिक जीवन को सही एवं उच्च दिशा देकर, परखने एवं सुधारने के लिए, लाभदाएक एंव सहायक हो सकता है-

गुरबाणी का उदेश्य	**हमारी धार्मिक क्रिया तथा दिशा**
1. अन्तरातमा में **अनुभवी 'मंडल'** का वर्णन, ब्यान, ज्ञान तथा **'टोह'** गुरबाणी में 'शब्द', 'नाम', 'अमृत', 'हरि-जल', 'प्रिम-प्याला', 'आत्म-प्रकाश', 'महारस', 'रुनझुन', 'अचरज', 'बिसमाद', 'अलमस्त', 'मतवारा' आदि शब्दों द्वारा स्पष्ट रूप से दी गयी है।	1. यह अनुभवी आत्मिक 'मंडल' हमारी दृष्टि तथा **बुद्धि की पकड़ से दूर होने के कारण,** इस पर हमें निश्चय ही नहीं या **नाममात्र**, तथा बिना **रुचि वाला निश्चय** है तथा इसके लिए **उद्यम करने** की **आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती।**
2. यह आत्मिक ज्ञान, अन्तरात्मा में **'अनुभव द्वारा'** ही **प्रकाशित होता** है जिसमें एक ही ( ) **पर श्रद्धा-भावना** है, जो **'प्रेम-स्वैपना'** में पलती है।	2. बाहरमुखी त्रिगुणी दिमागी ज्ञान, सुना-सुनाया, सीखा-सिखलाया, समझा-समझाया जाता है, जो कि **'बाहर' से प्राप्त किया जाता है।** यह ज्ञान **भिन्न-भिन्न** विचारों तथा निश्चयों वाला होने के कारण,

वाद – विवाद, वैर – विरोध, तअस्सुब, नफरत, लड़ाई तथा झगड़ों का **कारण बनता है।**

3. यह आत्मिक अवस्था सिर्फ 'मिलु साध संगत भजु केवल नाम' के ताकीदी हुकुम अनुसार **'साध – संगति' में विचरण करते हुए, नाम अभ्यास कमाई द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।**

3. परन्तु हमने **सिमरन** को अच्छी तरह **भुला** दिया है तथा नाम अभ्यास कमाई फालतू या **अनावश्यक प्रतीत होती है।**

4. 'नाम बिना सभि कूड़ गाल्ही होछीआ।।'
'नानक लेखै इक गल होर हउमै झखणा झाख।।'

4. परन्तु हम **लेखे वाली** (काम आने वाली) **एक बात 'नाम सिमरन' को भुला कर, तुच्छ एवं होछी बातों 'झखणा – झाख' में ही गलतान हैं।**

5. बिनु सिमरन जो जीवनु बलना सरप जैसे अरजारी।।

5. 'नाम हीन', 'सिमरन हीन' 'द्वैत – भाव' के **'जहर' से लथ – पथ जीवन, 'सर्प' की भाँति** व्यतीत कर रहे है।

6. 'मारगि मोती बीथरे अंधा निकसिओ आइ।।'
'जोत बिना जगदीस की **जगतु उलंघे जाइ।।'**

6. जो **'माणिक – मोती नाम'** गुरबाणी में दर्शाये हैं, हमने उनको कौड़ियों से भी सस्ता कर दिया है तथा अपनी अज्ञानता में रस्मी तौर से इसके **उपर से गुजर रहे हैं।**

7. **'गुरबाणी'** कहै सेवकु **जनु मानै** परतखि गुरू निसतारे।।

7. हम बाणी की सेवा, पाठ, पूजा, कथा, कीर्तन बहुत करते है, परन्तु बाणी के उपदेशों को **व्यवहार में लाने** की ओर ध्यान ही नहीं देते। इसलिए 'परतखि गुरू निसतारे' से **वंचित** जा रहे हैं।

8. 'आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु।।'	8. हमारी सेवा के पीछे कोई **निजी स्वार्थ, मायिकी जरुरत** या **'अहम्'** होता है।
'बैखरीदु किआ करे चतुराई इहु जीउ पिंडु सभु थारे।'	हम **'माया'** के ही **'बै-खरीद गुलाम'** बने हुए है तथा अपनी चतुराईयों से, **'मैं-मेरी' की सेवा** में **गलतान** हैं।
'आप गवा' कर **'बैखरीदु गोला'** (सेवक) बनना है।	हम **अपनी सेवा** का **मूल्य लेते हैं।** धर्म स्थानों में **सारे सेवादार 'वेतन भोगी'** हैं। रागी तथा कथा कार **बहुत महँगे मूल्य पर बाणी बेचते हैं।**
9. पुरातन समय में जीवन वाले, गुरुमुख प्यारे, बख्शे हुए, महा पुरुष धर्म स्थानों के **मुखिया या सेवादार** होते थे।	9. आजकल धर्म स्थानों के मुखिया **वोटों द्वारा चुने जाते हैं। इस तरह के चयन से भ्रष्टाचार, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध, स्वार्थ झगड़े तथा लड़ाई बढ़ते हैं** और **अहम का 'बोलबाला' है व 'कुर्सी' का 'लालच' है।**
10. पुरातन समय में धर्म-स्थान इने-गिने होते थे, परन्तु उनमें **'प्रेम-स्वैपना'**, सेवा भाव तथा **आत्मिक रस** का ऊँचा, सच्चा एवं **सुन्दर इलाही 'वातावरण'** होता था **जहां जाकर शान्ति, प्रीत, प्रेम सेवा का चाव उत्पन्न होता था।**	10. आजकल धर्मस्थान तथा संस्थाएं बहुत बढ़ गयी हैं, परन्तु इनमें **'आत्मिक वातावरण', 'शान्ति', 'जीवन-रौं', प्रेम तथा सेवा भावना कहीं-कहीं पर नाम मात्र ही नजर आती है।**
11. पुरातन समय में 'धर्म स्थान' **कच्चे** होते थे तथा सिक्ख **'पक्के'** होते थे।	11. अब धर्म स्थान **पक्के** हो गये हैं, तथा सिक्ख **कच्चे।**
12. सुयोग्यता (Quality) होती थी चाहे गिनती (Quantity) कम थी।	12. आजकल गिनती बहुत बढ़ गयी है परन्तु सुयोग्यता कम हो गयी है।

13. ‘अवरि काज तेरै कितै ना काम।।
मिलु साध संगति भजु केवल नाम।।’

13. पश्चिमी सभ्यता (Western Civilization) की अन्धाधुन्ध नकल करके, **फैशन तथा जरूरतें बढ़ा कर,** व्यर्थ रुझान इतने बढ़ा लिये हैं कि **‘साध संगति’** तथा **‘नाम सिमरन’** की ओर **ध्यान देने की फुरसत** या **आवश्यकता ही नहीं** तथा **‘अवरि काज’** में ही **गलतान होकर ‘माया’ का ही रूप हो गये हैं।**

14. हमारे जीवन के सारे पक्ष **गुरबाणी के आदेश, ‘प्रीत’, ‘प्रेम’, ‘सेवा’, ‘नाम’, ‘हुकुम’ के ‘केन्द्र’ के चारों ओर घूमने चाहिए।**

14. हम गुरबाणी को निजी स्वार्थ या **मायिकी आवश्यकताओं** के लिए **प्रयोग** करते हैं तथा बाणी पर अपनी अल्प **बुद्धि की रंगत चढ़ाकर मन की मति के पीछे लगाते हैं।** इस प्रकार **बाणी के आन्तरिक आशय से दूर जा रहे हैं।**

15. **‘प्रीत, प्रेम, प्यार’** ही **‘जीवन रौं** है’, **‘नाम’** है, **‘हुकुम’** है।
‘साचु कहों सुन लेहु सभै **जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइओ।’**

15. आजकल दुनिया में आत्मिक **‘प्यार–भावना’** या **‘प्रेम स्वैपना’** का **‘अकाल’ पड़ा हुआ है।** यदि कहीं प्यार की झलक नजर आती है, तब उसके **पीछे भी ‘गरज’** या **‘मोह’** का **अंश होता है।**

16. यह अन्तरमुरवी आत्मिक **‘तत्त्व ज्ञान’, अनुभवी तजुरबा** है, **‘जीवन रूप’** है तथा इसका प्रचार भी, **‘अनुभवी खेल है’, अबोल है, ‘चुप–चबोला’** है, **‘चुप–प्रीत’** है तथा **‘प्रकाशमयी’** है। **एक ही** ‘ ’ **के निश्चय** के आधार पर **निर्भर है।**

16. हमारा ‘धर्म–प्रचार’ पूर्णतया **दिमागी ज्ञान के भिन्न–भिन्न** विचारों, धारणाओं तथा फिलोस्फियों पर आधारित है। परिणामस्वरूप प्रायः इनमें मतभेद (difference) होने के कारण, **धर्म के नाम पर वाद–विवाद, शोर–शराबा तथा झगड़े** होते रहते हैं।

17. इस **'आत्मिक खोल'** को 'गुरप्रसादि' से **अनुभव द्वारा** ही **बूझा, सीझा, चीन्हा, पहचाना** जा सकता है।

17. हम इन गुप्त भेदों वाले शब्दों का वैसे ही **ऊपरी दिमागी ज्ञान द्वारा** शाब्दिक–अर्थ करके **टाल–मटोल** कर देते है।

18. हमारे मिश्नरी स्कूल, कॉलेज, **आत्मिक अनुभवी विद्या के** सही आश्रम होने चाहिए, जहाँ नाम अभ्यास होने चाहिए, जहाँ नाम अभ्यास कमाई वाले, **जीवन वाले, गुरमुख–प्यारे 'मुखिया' होने चाहिए। इनके लिए विद्यक डिग्रियाँ आवश्यक नहीं।**

18. हमारी धार्मिक संस्थाओं में दिमागी ज्ञान, कर्म–काण्ड वाली धार्मिक फिलोस्फियाँ तथा इतिहास ही पढ़ाये जाते है।

19. जीवन वाले **गुरमुख प्यारे, बख्शे हुए महापुरुषों की संगति, साध संगति के 'मेल' तथा 'छुह'** द्वारा उच्च आत्मिक–ज्ञान का 'अनुभव' हो सकता है।

19. हमने इस **'आत्मिक–तत्ज्ञान' को दिमाबी विषय ही बना दिया है** तथा इसका नाममात्र दिमागी ज्ञान द्वारा प्रचार करके **टाल–मटोल कर देते है।**

20. ऐसी 'उचच एवं सच्ची' **'जीवन–वाली'** 'साध संगति' में से ही, 'अन्तर्मुखी' **'अनुभवी' आत्मिक ज्ञान के प्रचारक** पैदा हो सकते है।

20. हमारी वर्तमान धार्मिक संस्थाओं में से **दिमागी ज्ञानी** तथा फिलोस्फर ही पैदा होते है, **जो 'अन्तींव आत्मिक' अनुभवी ज्ञान से वंचित होते है।**

21. अनुभवी आन्तरिक **'तत्व–ज्ञान'** के बिना, गुरबाणी की **पूरी तथा** सही **आत्मिक सूझ** नहीं हो सकती तथा हमारे जीवन में **परिवर्तन** नहीं आ सकता।

21. हम गुरबाणी के बाहर मुखी दिमागी, पाठ, गायन तथा ज्ञान से ही पूर्णतया **सन्तुष्ट** हैं तथा स्वयं **'भद्र–पुरुष'** बने फिरते है। इसी कारण हमारे अपने तथा श्रोतोओं के **जीवन में परिवर्तन** नहीं आता।

22. गुरू की 'मति' **गुर–मति एक** है, जो गुरबाणी में, स्पष्ट की गयी है।

22. हम अपनी–अपनी बुद्धि अनुसार **भिन्न–भिन्न** 'धार्मिक मर्यादा' का प्रचार करते हैं तथा वास्तविक अनुभवी आत्मिक **'गुरमति' से दूर जा रहे है।**

23. 'चिंतत ही दीसै सभु कोइ **चेतहि एकु तही सुखु होइ॥'**

23. हम **'अनेक चिंतन'** में दुखी हो रहे हैं। **'एक चिंतन' का हमें ख्याल ही नहीं तथा न आवश्यकता ही प्रतीत होती है।**

24. गुरू साहिब ने, हम पर तरस करके, अपनी कृपा द्वारा, हमें **'धुर की बाणी'** का **प्रेम–पदार्थ प्रदान किया है।**

24. इस इलाही **'प्रेम–पदार्थ'** की कदर–कीमत समझने के स्थान पर, हम गुरबाणी को खुल्लम–खुल्ला बेच कर इलाही प्रेम बख्शिश का **निरादर करते हैं।**

25. 'मानस जनमु अमोलक पाइओ बिरथा काहि गवावउ॥'

25. हम मानव जन्म को पाँच **वासनाओं की गुलामी** में ही व्यर्थ गँवा रहे हैं तथा इस अमूल्य जीवन की कदर–कीमत का हमें ज्ञान ही नहीं।

26. 'रोसु न काहू संग करहु आपन आपु बीचारि॥'

26. हम दिन रात लोगों के साथ **केवल रोष ही नहीं करते,** अपितु **अनगिनत 'रोष', 'गिले', 'शिकायतें', 'ईर्ष्या–द्वेष'** के **भावनाँए,** मन में **घोट–घोट** कर उनकी 'फाइलें' (files) बना रखी है तथा इन **'रोष'** की 'गांठो' को प्रतिदिन और **'पक्का'** करते रहते है। इस प्रकार अपने मन पर **गाढ़ी मैल** का 'लेप' (coating) चढ़ा रहे है। जिस कारण हमारा मन **उच्च आत्मिक शिक्षा** तथा **भावनाओं को पकड़ने में असमर्थ हैं।**

हमारा बाहरमुखी दिमागी 'धर्म प्रचार' भी अधूरा, निरुत्साह, नाम मात्र हो रहा है, क्योंकि हम अपने स्वार्थी मायिकी रुझानों में इतने गलतान तथा खोये हुए हैं कि धर्म या धर्म प्रचार की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती।

जब हमारे सारे धर्मों तथा धर्म–स्थानों में इतनी ग्लानि (corruption) आ गयी है, जैसे–'थानसट जग भरिसट होए डूबता इव जगु।।' तब हमें धर्म–प्रचार से उत्तम 'आत्मिक दिशा' तथा मार्गदर्शन कहां से मिल सकता है?

पश्चिमी देशों में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए बहुत बड़े तथा मजबूत संगठन बने हुए हैं तथा इन में तन मन से जोरदार प्रचार हो रहा है। जिसके परिणाम स्वरुप ईसाई मत, संसार के कौने–कौने में फैल गया है। अंग्रेजी के अतिरिक्त दुनिया को अनेक भाषाओं में बाईबल (Bible) के अनगिनत अनुवाद (translation) हो चुके है। इसके अतिरिक्त ईसाई मत के विकास के लिए अनेक किताबें, पर्चे तथा लेख लिखे जाते है, जो घर–घर जाकर, हवाई जहाजों में, रेलों में, बसों में, होटलों में, बाजारों में तथा अड्डों में निःशुल्क बाँटे जाते है।

उनकी तुलना में हमारे प्रचार का 'उद्यम'–अधूरा निरुत्साह, नाम मात्र दिखावा ही है तथा यह–'आटे में नमक' के बराबर है। हमारा प्रचार केवल सरलता से पहुँचे जान वाले शहरों एवं कस्बों तक ही सीमित है। दूर–दूर के ग्रामों में जहाँ प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है, हम जाने का प्रयास ही नहीं करते। इसके परिणाम स्वरुप हमारे ग्राम–निवासी, जिनकी संख्या बहुत अधिक है, गुरबाणी तथा गुरसिक्खी से दूर जा रहे है। जिससे दूसरे मतों के प्रचारक लाभ उठाकर गाँव के भोले–भोले लोगों को अपने–अपने धर्म की ओर प्रेरित कर लेते हैं। इस लापरवाही से हम किसी बहाने से मुक्त नहीं हो सकते।

दिमागी प्रचार के स्तर पर भी हम, ईसाई तथा अन्य मतों की प्रचार की प्रणालियों का अध्ययन करके, अपने प्रचार के लिए मार्ग–दर्शन तथा सहायता ले सकते हैं।

जो थोड़ा–बहुत दिखावा मात्र धर्म प्रचार हो रहा है, उसका भी कोई खास प्रभाव प्रतीत नहीं होता, क्योंकि हमारे धार्मिक ग्लानि कम होने की अपेक्षा बढ़ती जा रही है। इसका कारण यह है कि हम कथनी–बदनी तो करते हैं, परन्तु उसको अपने व्यवहारिक जीवन में नहीं लाते। हमारी 'कथनी' केवल दिमागी 'शुगल' ही होता है, या मायिकी स्वार्थ की पूर्ति ही है। इस प्रकार के प्रचार के पीछे, अन्तर–आत्मिक 'नाम' की दामनिक शक्ति नहीं होती, जिस कारण श्रोताओं पर नाम मात्र या बिल्कुल ही कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

गुरबाणी में ऐसी अवस्था के विषय में यूं ताड़ना की गयी है: –

अवर उपदेसै आपि न करै।। आवत जावत जनमै मरै।। (पृ. २६९)

कबीर अवरह कउ उपदेसते मुख मै परि है रेतु।।
रासि बिरानी राखते खाया घर का खेतु।। (पृ. १३६९)

पड़ि पंडितु अवरा समझाए।। घर जलते की खबरि न पाए।। (पृ. १०४६)

पंडित वाचहि पोथीआ ना बूझहि वीचारु।।
अन कउ मती दे चलहि माइआ का वापारु।।
कथनी झूठी जगु भवै रहणी सबदु सु सारु।। (पृ. ५६)

पैसे की कमी का बहाना निर्मूल है, क्योंकि गुरु – घर में धन की कमी नहीं हो सकती।

हमारे हृदय में केवल 'धर्म – प्रचार' की सही, ऊँची एवं सच्ची 'लगन' या 'तड़प' तथा 'स्वयं को न्यौछावर' करने की भावना की ही आवशकता है। परन्तु यह 'उत्तम आत्मिक सेवा' केवल 'मर जीवड़े', बख्शे हुए गुरुमुख प्यारे ही कर सकते हैं–

आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु।। (पृ. ४७४)

आपि जपहु अवरा नामु जपावहु।। (पृ. २८९)

सेवा करत होइ निहकामी।। तिस कउ होत परापति सुआमी।। (पृ.२८६)

सतिगुर की सेवा सदा करि भाई विचहु आपु गवाइ।। (पृ. ६३८)

गुरबाणी की अनेक पंक्तियां, 'आत्मिक मंडल' के किसी 'तत्व – रूप' 'इलाही' अवस्था की प्रतीक हैं तथा हमें पवित्र – पावन 'आत्मिक जीवन' की ओर प्रेरित करती है।

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।। (पृ. ४४२)

इहु सरीरु करम की धरती गुरमुखि मथि मथि ततु कढईआ।। (पृ. ८३४)

अंदरु खोजै ततु लहै पाए मोख दुआरु।। (पृ. ६५०)

कहतु कबीर नवै घर मूसे दसवैं ततु समाई।। (पृ. ३३९)

माई री पेखि रही बिसमाद।।
अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ता के स्वाद।। (पृ. १२२६)